सुभाष और गाँधी का मूल मतभेद

*डॉ. नगमा खानम

दासता से युक्त प्रत्येक राष्ट्र में मुक्ति पाने के लिए कुछ विभिन्न प्रकार के अथक प्रयास किये जाते हैं। कुछ लोग स्वतंत्रता प्राप्ति के लिए उदारवादी नीति का अनुसरण करते हैं और संघर्ष से अलग रहते हुए कार्य करते हैं। कन्तु कुछ देश भक्तों द्वारा विदेशी शासन कर्ताओं को आतंकित करके राज्य सत्ता छोड़ने के लिए विवश किया जाता है। भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन में भी इन दोनों प्रकार के तत्वों का विशेष योगदान रहा है। यह सत्य है कि भारतीय स्वाधीनता प्राप्ति का मुख्य श्रेय गाँधीवादी अहिंसक आन्दोलन को ही दिया जाता है, परन्तु अंग्रेजी शासन को भारत छोडने के लिए काफी सीमा तक भारत के महान क्रान्तिकारी सुभाषचन्द्र बोस व उनकी आजाद हिन्द फौज ने भी विवश किया।

भारतीय राजनीति के कुछ मिथ हैं, जिनमें एक यह भी है कि नेताजी सुभाष, महात्मा गाँधी के प्रबल विरोधी थे व एक-दूसरे को फूटी आँख नहीं सुहाते थे और कई मौकों पर नेहरू जी का चरित्र संदिग्ध हो जाता था, जबकि वस्तुस्थिति यह भी है सुभाष गाँधी के अनन्य प्रशंसक व गाँधी जी द्वारा चलाये जा रहे स्वाधीनता अभियानों के पूरक थे। इन महारथियों में दृष्टि, साम्य, धर्मनिष्ठा व देशभक्ति की अन्तर्ज्वाला सतत् प्रवाहित होती रही थी। इतिहास का यह क्रूर मजाक है, कि ये दोनों हस्तियाँ युद्ध के बाद मिल न सकीं। अन्यथा देश का इतिहास शायद कुछ और ही होता। स्वयं गाँधीजी ने इसे स्वीकारा था।

स्वतंत्रता पूर्व भारतीय राजनीति का मलिन अध्याय था। कांग्रेस का 1936 का त्रिपुरी, अधिवेशन, जहाँ सुभाष-गाँधी आमने-सामने खड़े थे। कांग्रेस अध्यक्ष के चर्चित चुनाव में गाँधीजी के उम्मीदवार थे सीतारमैय्या व युवाओं के प्रत्याशी थे नेताजी सुभाषचन्द्र बोस। बोस को 1580 मत मिले, जबकि गाँधी समर्पित सीतारमैय्या को मात्र 1375 मत मिले। बोस की इस निर्णायक जीत पर गाँधीजी ने कहा था- यह पट्टाभि की नहीं मेरी हार है। यह एक विरला अवसर था, जब सौम्य व शान्त प्रकृति का यह वयोवृद्ध इतना खीझ व चिड़चिड़ा हो गया था।[1]

इस लज्जास्पद घटना के बावजूद सुभाष बोस ने गाँधीजी से सदैव देश का नेतृत्व करने के लिए आग्रह किया। उन्हें राष्ट्रपति कहा और अपनी भावी योजनाओं के लिए उनसे आशीर्वाद भी माँगा। नेताजी का महात्मा के प्रति कितना निश्चल विश्वास व देश के प्रति यथार्थवादी प्रेम था। भारतीय नेशनल कांग्रेस का 15वां अधिवेशन 19 फरवरी 1938 को हरिपुर में होना निश्चित था। सुभाष बोस की स्वतंत्रता प्राप्ति के प्रति एक निश्चित सरकार से टक्कर लेने का अदम्य साहस देश के अनेक दलों, विशेषकर युवा वर्ग को सम्मोहित कर चुका था। इस स्थिति में गाँधीजी का सुभाष बोस को अध्यक्षीय पद सौंपने की योजना से गाँधीवादी कांग्रेसी आश्चर्यचकित थे। ह्यूग टोइ के अनुसार, 'कांग्रेस में ऐसी ऊर्जस्वी शक्ति का अभाव था... बोस जैसा समाजवादी, धर्मनिरपेक्ष तथा व्यवहारवादी व्यक्तित्व कांग्रेस में नहीं था, जो नेतृत्व कर सकता।'[2] एन.जी. जोग का कहना है कि गाँधी के इस कदम को देशवासियों ने उनकी महानता तथा समझौते का मनोभाव तो समझा

* सहायक प्राध्यापक, वाणिज्य विभाग, माधव महाविद्यालय, ग्वालियर